आत्मा और पुनर्जन्म

— एक तार्किक परीक्षण —



अब्दुल रहमान

आत्मा और पुनर्जन्म

—— एक तार्किक परीक्षण ——

अब्दुल रहमान

विषय-सूची

- ✷ दो शब्द 4
- ✷ पुनर्जन्म अथवा आवागमन : कर्म-सिद्धांत का तार्किक खंडन 5
- ✷ केवल सत्ता और धन-दौलत से संसार में सुख नहीं मिलता 6
- ✷ अंधा, बहरा, लँगड़ा होना पूर्वकर्मों का परिणाम नहीं 7
- ✷ सांसारिक सफलता से आध्यात्मिक आनंद का प्राप्ति होना कदापि आवश्यक नहीं 9
- ✷ अच्छे और उत्तम लोग ही अधिकतर दुख सहते हैं 10
- ✷ शरीर और कर्म एक-दूसरे पर आश्रित हैं—यह चक्र-दोष तर्क की दृष्टि से असंभव है 10
- ✷ भूविज्ञान का शोध पुनर्जन्म के सिद्धांत के विरुद्ध गंभीर प्रश्न प्रस्तुत करता है 11
- ✷ संसार में जीव-जंतुओं की तुलना में मनुष्यों की न्यूनता 12
- ✷ पुनर्जन्म के सिद्धांत और सत्कर्मों में विरोधाभास 13
- ✷ सज़ा का प्रभावी और अनुभवनीय होना आवश्यक है 14
- ✷ दंड और पुरस्कार के लिए आत्मा का अपने कर्मों का ज्ञान होना आवश्यक है 15
- ✷ पुनर्जन्म पापों का नाश नहीं, बल्कि उन्हें और प्रबल करता है 16
- ✷ पुनर्जन्म का सिद्धांत : नैतिकता और सद्‌गुणों का विरोधी 17
- ✷ आवागमन (पुनर्जन्म) के लिए पापों की अनिवार्यता 18
- ✷ संसार में पाप की आवश्यकता है 19
- ✷ आवागमन क्या है? 19
- ✷ संसार पाप का परिणाम है? 20
- ✷ परमात्मा के कैदी (बंदी) 20

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"ईश्वर के नाम से, जो अत्यन्त दयावान और बड़ा कृपालु है।"

दो शब्द

यह पुस्तक वास्तव में मौलाना सैयद अबू मुहम्मद साकिब कानपुरी (रह.) की सुप्रसिद्ध उर्दू पुस्तक 'आर्य मज़हब का आईना' के अध्याय 'पुनर्जन्म या आवागमन का खंडन' का हिंदी अनुवाद है। अनुवादक अब्दुल रहमान ने मूल भाव को यथावत रखते हुए हिंदी पाठकों के लिए अधिक सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है। साथ ही, कुछ स्थानों पर विषय को अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने के लिए अनुवादक ने अपने तर्क भी प्रस्तुत किए हैं।

इस पुस्तक के अनुवाद में हर संभव सावधानी बरती गई है। इसके बावजूद यदि कहीं कोई त्रुटि, भूल या अशुद्धि रह गई हो, तो उसे मौलाना की ओर आरोपित न किया जाए; ऐसी किसी भी त्रुटि की संपूर्ण ज़िम्मेदारी अनुवादक अब्दुल रहमान की होगी।

इस पुस्तक को हिंदी में प्रस्तुत करने की आवश्यकता मुख्यतः दो कारणों से महसूस हुई।

पहला, ऐसे मुसलमान जो उर्दू भाषा से परिचित नहीं हैं, किंतु आर्य मत की वास्तविकता को समझना और जानना चाहते हैं, वे भी इस विषय से लाभ उठा सकें।

दूसरा, ऐसे आर्य सज्जन जो उर्दू भाषा नहीं जानते और यह समझते हैं कि मुस्लिम विद्वानों ने उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, उनके लिए यह जानना आवश्यक है कि उलेमा-ए-हिंद ने आर्य समाज के अस्तित्व में आते ही उसके सिद्धांतों और दावों का उत्तर देना आरंभ कर दिया था तथा उसके मतों का तर्कपूर्ण खंडन प्रस्तुत किया था। अतः यह धारणा कि आर्य मत द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर मुस्लिम विद्वानों के पास नहीं है, ऐतिहासिक तथ्यों के अनुरूप नहीं है। हमें आशा है कि इस पुस्तक के अध्ययन से आवागमन (पुनर्जन्म) के सिद्धांत की वास्तविकता पाठकों के सामने स्पष्ट होगी और वे इस विषय पर स्वयं भी गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए प्रेरित होंगे। भविष्य में भी हमारा प्रयास रहेगा कि आर्य मत के विभिन्न धार्मिक मान्यताएं और सिद्धांतों पर इसी प्रकार अलग-अलग विषयों पर पुस्तकें तैयार की जाएँ और उन्हें सरल एवं सुबोध हिंदी भाषा में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जाए, ताकि पाठक किसी भी मत या विचार को केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके मूल तर्कों और प्रमाणों के आधार पर समझ सकें और किसी निष्कर्ष तक पहुँच सकें। अंत में पाठकों से हमारी केवल इतनी-सी विनती है कि वे इन पुस्तकों को स्वयं पढ़ें, समझें और यदि इनमें उन्हें कोई सत्य एवं उपयोगी बात दिखाई दे, तो इन्हें अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में भी सहयोग करें।

अब्दुल रहमान

पुनर्जन्म अथवा आवागमन : कर्म-सिद्धांत का तार्किक खंडन

पुनर्जन्म या आवागमन वैदिक धर्म का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और मूलभूत सिद्धांत है। इस विषय में आर्यों का धार्मिक विश्वास और मत यह है कि मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में जितने भी अच्छे या बुरे कर्म करता है, उनके सुख-दुःख का फल उसे इसी संसार में विभिन्न शरीरों और योनियों में जन्म लेकर भोगना पड़ता है। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति अच्छे कर्म करता है तो मृत्यु के बाद उसे किसी उत्तम शरीर में जन्म मिलता है और यदि उससे बुरे कर्म होते हैं तो उसे किसी निकृष्ट योनि या शरीर में जन्म लेना पड़ता है।

इस पूरे सिद्धांत के समर्थन में आर्य समाजियों की सबसे बड़ी दलील यह है कि संसार में मनुष्यों को जो विभिन्न प्रकार के सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, उनका कारण पिछले जन्मों के कर्मों के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यदि पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धांत को न माना जाए, तो फिर इसका क्या कारण है कि कोई राजा है और कोई प्रजा, कोई शासक है और कोई शासित; कोई धनवान है और कोई निर्धन; कोई स्वस्थ है और कोई रोगी; कोई अंग-प्रत्यंग से पूर्ण है और कोई विकलांग; कोई सुंदर है और कोई कुरूप; कोई बुद्धिमान है और कोई मूर्ख; कोई ब्राह्मण है और कोई शूद्र—इत्यादि?

इन्हीं प्रकार के भेदों और मनुष्यों की विभिन्न परिस्थितियों को देखकर आर्य विद्वान यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि ये सब पिछले जन्मों के कर्मों का फल नहीं हैं, तो फिर निश्चय ही यह ईश्वर का अन्याय और अत्याचार होगा कि उसने किसी को रोगी बनाया और किसी को स्वस्थ, किसी को विकलांग बनाया और किसी को पूर्णांग, किसी को शासक बनाया और किसी को शासित। इसी विचार को आधार बनाकर पंडित दयानंद ने पवित्र क़ुरआन जैसे ईश्वरीय ग्रंथ पर भी आपत्ति उठाई। चूँकि आर्यों के अनुसार ईश्वर अन्यायी और अत्याचारी नहीं हो सकता, इसलिए संसार में पाए जाने वाले इन तमाम भेदों और असमानताओं की व्याख्या के लिए पुनर्जन्म अथवा आवागमन के सिद्धांत को मानना आवश्यक ठहराया जाता है।

परंतु जब इस तर्क पर गंभीरता से विचार किया जाता है, तो यह पूरी धारणा अपने आप कमजोर पड़ जाती है। यदि आर्यों के इस सिद्धांत को मान लिया जाए कि किसी व्यक्ति को बिना अपराध के सुख या दुःख देना अन्याय है, तो क्या एक दयालु माँ का अपने बीमार बच्चे को कड़वी दवा पिलाना भी अत्याचार कहलाएगा? बच्चा दवा पीने से इनकार करे, रोए और माँ उसे मजबूर करके दवा पिला दे—तो क्या माँ की यह कठोरता बच्चे पर अत्याचार मानी जाएगी और क्या यह कहा जाएगा कि बच्चे को उसके पूर्वजन्म के अपराध की सज़ा दी जा रही है? निश्चय ही नहीं। बल्कि माँ का यह कृत्य उसकी ममता, प्रेम और बच्चे के प्रति चिंता का प्रमाण माना जाएगा।

इसी प्रकार यदि कोई शल्य-चिकित्सक किसी रोगी के फोड़े को चीरकर उसे पीड़ा पहुँचाता है, तो क्या यह पीड़ा उसके किसी पाप की सज़ा के रूप में दी जा रही होती है? या फिर यह चिकित्सक की सहायता, उपचार और रोगी के प्रति उसकी सेवा का एक आवश्यक भाग है? निस्संदेह, आर्य समाजी मित्र भी इस उदाहरण पर विचार करने के बाद चिकित्सक को अत्याचारी नहीं कहेंगे।

इसी प्रकार ईश्वर की ओर से बिना किसी पूर्व कारण के किसी व्यक्ति पर कृपा और अनुग्रह किए जाने के प्रश्न को भी समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति अपने दस रुपये मासिक वेतन पाने वाले नौकर को उसकी मेहनत, निष्ठा और कार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर किसी अवसर पर दो सौ रुपये का पुरस्कार दे देता है। तो क्या यह व्यवहार अत्याचार या अन्याय कहलाएगा, या उसकी कृपा, उदारता और प्रशंसा का प्रमाण माना जाएगा? निश्चय ही कोई बुद्धिमान व्यक्ति इसे अत्याचार नहीं कह सकता।

जब यही कृत्य मनुष्यों की तरफ से की जाए तो उन्हें पाप, अपराध, अन्याय या अत्याचार नहीं, बल्कि स्नेह, प्रेम, सहायता, सेवा, कृपा और उदारता कहा जाता है; तो फिर ईश्वर की ओर से किए गए ऐसे ही कार्य किस प्रकार अन्याय और अत्याचार ठहर सकते हैं?

अतः केवल इस आधार पर कि संसार में मनुष्यों की परिस्थितियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं, यह निष्कर्ष निकाल लेना कि अवश्य ही ये सभी भिन्नताएँ पिछले जन्मों के कर्मों का फल हैं, कोई सही निष्कर्ष नहीं है। संसार में सुख-दुःख, स्वास्थ्य-रोग, सामर्थ्य-दुर्बलता और अन्य अनेक परिस्थितियों के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं। इसलिए केवल इन भेदों को देखकर पुनर्जन्म के सिद्धांत को अनिवार्य सिद्ध कर देना तार्किक रूप से उचित नहीं।

अब मैं इस विषय के प्रत्येक पक्ष पर क्रमशः और विस्तार से चर्चा करूँगा।

केवल सत्ता और धन-दौलत से संसार में सुख नहीं मिलता

यह विचार कि जिसके पास धन और शासन-सत्ता है, वही सुखी है और जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वही दुखी है—बिल्कुल गलत है। यदि कोई बादशाह या धनवान अपनी दौलत और शासन-सत्ता के कारण प्रसन्न है, तो एक निर्धन व्यक्ति भी, जो संतोष की संपत्ति से मालामाल है, उससे किसी प्रकार कम भाग्यशाली नहीं है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति की संपत्ति बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उसकी जिम्मेदारियाँ, चिंताएँ और परेशानियाँ भी बढ़ती जाती हैं। यदि किसी शासक या धनवान को एक दृष्टि से सुख प्राप्त है, तो दूसरी दृष्टि से वह अनेक चिंताओं और दुखों में भी घिरा हुआ है। इसी प्रकार यदि किसी गरीब मजदूर के जीवन में एक प्रकार का कष्ट है, तो दूसरी ओर उसे ऐसी राहत और बेफिक्री भी प्राप्त है, जो धनवानों के लिए दुर्लभ है।

कहा जाता है कि एक फकीर, जो तरक्की करते-करते शाही तख्त तक पहुँच गया था, जब उसने उस तख्त को त्याग दिया तो कहता है:

“पहले मुझे केवल अपनी रोटी की चिंता थी, लेकिन अब मुझे सारे संसार की चिंता सताने लगी थी।”

अब यदि इस दर्शन पर गंभीरता से विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि एक किसान या गरीब मजदूर दिन-भर की कड़ी मेहनत के बाद धरती के बिछौने पर जिस बेफिक्री और सुकून के साथ सोता है, वह बादशाहों और अमीरों को फूलों से सजे हुए मुलायम बिस्तरों पर भी नसीब नहीं होता।

वास्तविक सुख धन-दौलत, सत्ता और ऐश्वर्य की अधिकता में नहीं, बल्कि संतोष, निश्चिंतता और मन की शांति में है। धन मनुष्य को सुख-सुविधाएँ तो दे सकता है, लेकिन यदि उसके साथ चिंता और असंतोष जुड़ जाएँ, तो वही धन उसके लिए बोझ बन जाता है। इसके विपरीत, जिसके पास कम है लेकिन मन संतुष्ट है, वह अभाव में रहते हुए भी उस शांति का आनंद उठा सकता है, जिसे बड़े-बड़े महलों के निवासी भी तरसते हैं।

अंधा, बहरा, लँगड़ा होना पूर्वकर्मों का परिणाम नहीं

आर्यों का यह भी दावा है कि संसार में जितने भी अंधे, बहरे, गूँगे अथवा किसी प्रकार के अपंग लोग हैं, वे सभी अपने किसी-न-किसी पूर्वकर्म की सज़ा भुगत रहे हैं। उनका तर्क है कि यदि ऐसा न हो, तो ईश्वर किसी निर्दोष व्यक्ति को अंधा, बहरा या किसी अन्य प्रकार से अपंग क्यों बनाता? इससे वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आवागमन अर्थात् पुनर्जन्म के द्वारा ही मनुष्य विभिन्न शरीरों में जन्म लेकर अपने पूर्वकर्मों की सज़ा भोगता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अंधा, बहरा, गूँगा या किसी अन्य प्रकार का अपंग होना एक शारीरिक कमी (अभाव) है। लेकिन जो ईश्वर अत्यंत दयालु और कृपालु है, वह किसी व्यक्ति की एक कमी की भरपाई दूसरी प्रकार की सुविधाओं और गुणों के द्वारा कर सकता है। अतः केवल किसी मनुष्य की शारीरिक अवस्था देखकर यह निष्कर्ष निकाल लेना कि वह अपने पूर्वजन्म के पापों की सज़ा भुगत रहा है, उचित नहीं। उदाहरण के तौर पर, एक अंधा व्यक्ति अपनी दृष्टिहीनता के कारण उन अनेक दृश्यों को देखने से बचा रहता है, जो देखने वाले व्यक्ति को बुरी दृष्टि और अन्य पापों में डाल सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी आँखों का दुरुपयोग करके बुरी दृष्टि के पाप में पड़ता है और उसके कारण नरक का अधिकारी बनता है, तो सच यह है कि उस पाप में पड़ने की अपेक्षा जन्म से अंधा होना किसी दृष्टि से बेहतर ही कहा जाएगा। इसी प्रकार, एक बहरा व्यक्ति बहुत-सी ऐसी बुरी और व्यर्थ बातों को सुनने से भी बचा रहता है, जो उसे पाप और बुराई की ओर ले जा सकती हैं।

अतः केवल किसी व्यक्ति की बाहरी स्थिति देखकर यह निर्णय कर लेना कि जिन लोगों के पास विशेष प्रकार की सुविधाएँ, संपत्ति या ऐश्वर्य के साधन हैं, वे हर दृष्टि से सुखी और प्रसन्न हैं, जबकि जिनके पास ये सुविधाएँ नहीं हैं, वे हर प्रकार से दुखी और विपन्न हैं—एक अत्यंत भ्रामक और खतरनाक भूल है।
वास्तविक सुख केवल शरीर की स्वस्थता, धन-दौलत अथवा सांसारिक सुविधाओं पर निर्भर नहीं करता। एक लँगड़ा, लूला, अंधा या निर्धन व्यक्ति, जो फटे-पुराने कपड़े पहनकर और केवल एक जौ की रोटी खाकर अपना जीवन व्यतीत करता है, यदि संतोष की वृत्ति रखता है, तो वह किसी हट्टे-कट्टे, स्वस्थ और धनवान व्यक्ति से किसी भी प्रकार कम भाग्यशाली या सुखी नहीं कहा जा सकता।
देखो, एक धनवान व्यक्ति जो ऐश्वर्य और विलासिता का आदी हो चुका है, यदि उसकी मनचाही वस्तु मिलने में थोड़ी-सी भी देर हो जाए, तो उसे उस समय उतनी ही पीड़ा हो सकती है, जितनी किसी गरीब मजदूर को एक दिन भूखा रहने से होती है। इससे स्पष्ट है कि सुख-दुख का संबंध केवल बाहरी साधनों से नहीं, बल्कि मनुष्य की संतुष्टि और मानसिक अवस्था से भी होता है।
अतः किसी व्यक्ति की शारीरिक कमी, निर्धनता अथवा सांसारिक अभाव को देखकर यह निर्णय कर देना कि वह अवश्य ही अपने पूर्वजन्म के पापों का दंड भोग रहा है, बिल्कुल ही तर्कसंगत नहीं। इसी प्रकार, धन, स्वास्थ्य और ऐश्वर्य को देखकर किसी व्यक्ति को हर दृष्टि से सुखी और भाग्यशाली समझ लेना भी उचित नहीं।
यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य का शरीर विभिन्न तत्वों का समूह है और उसके निर्माण तथा विकास का प्रकृति के नियमों से गहरा संबंध है। शरीर की स्थिति और उसके परिणाम उन्हीं प्राकृतिक नियमों के अनुसार निर्धारित होते हैं, जिनका रचयिता ईश्वर है। इन नियमों का उल्लंघन करने पर उसके स्वाभाविक परिणाम सामने आते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि यह प्राकृतिक नियम स्वीकार किया गया है कि गेहूँ बोने का उचित समय कार्तिक का महीना है और धान के लिए वर्षा का मौसम अनुकूल है, तो जो किसान इन नियमों की उपेक्षा करके कार्तिक के स्थान पर माघ आदि में गेहूँ बोएगा, संभव है कि उसकी फसल पैदा ही न हो; और यदि पैदा हो भी जाए, तो वह कमजोर एवं खराब होगी। अब यदि कोई किसान यह आपत्ति करे कि अमुक व्यक्ति ने गेहूँ बोया और उसकी फसल अच्छी हुई, जबकि मैंने भी गेहूँ बोया, फिर मेरी फसल खराब या निष्फल क्यों हुई—तो ऐसी आपत्ति निरर्थक होगी। कारण स्पष्ट है कि उसने प्राकृतिक नियमों के अनुकूल अपना खेत नहीं जोता और प्रकृति ने भी उसे उसी के अनुसार उसका परिणाम दिया।
लँगड़े, अपंग या रोगी बच्चे के जन्म के विषय में भी इसी प्रकार से प्राकृतिक नियम कार्य करते हैं—गर्भाधान के समय माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, पोषण, वातावरण आदि अनेक कारण इसमें भूमिका निभाते हैं।

आर्यों को तो कम-से-कम इस विषय पर पुनर्जन्म का सहारा इसलिए भी नहीं लेना चाहिए, क्योंकि पंडित दयानंद ने यजुर्वेद (14:88) के भावार्थ में स्पष्ट लिखा है कि—

"स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ को धारण करें, जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न होवे।" अब यदि किसी आर्य के परिवार में विकलांग या रोगी संतान जन्म लेती है, तो इसका अर्थ यही है की उस परिवार ने वेद के इस टोटके का पालन नहीं किया। अतः इस विषय पर आर्यों को पुनर्जन्म का सहारा लेना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं हैं।

सांसारिक सफलता से आध्यात्मिक आनंद का प्राप्ति होना कदापि आवश्यक नहीं

यह निश्चित नहीं कि जो व्यक्ति धनवान और अधिकार-संपन्न हो, वह आध्यात्मिक सुखों का भी स्वामी हो। प्रायः शासन और धन का दुरुपयोग बड़े-बड़े पापों तथा भयंकर विपत्तियों का कारण बन जाता है। अनेक धनवान और संपन्न लोग सांसारिक इच्छाओं और भोग-विलास में इस प्रकार फँस जाते हैं कि शाश्वत एवं आध्यात्मिक सुखों से वंचित रह जाते हैं। राष्ट्रीय और व्यक्तिगत पतन के साथ-साथ शारीरिक तथा मानसिक विकार भी प्रायः धन और शक्ति के दुरुपयोग का परिणाम बनते हैं। ईसा मसीह (अ.) का यह कथन कि “ऊँट का सुई के छेद से निकल जाना किसी धनवान का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने से अधिक सरल है”, अपने अर्थ की दृष्टि से अत्यंत सत्य है। यह ईश्वर की महान कृपा ही है कि उसने आत्मिक सुख को केवल भौतिक संपन्नता पर निर्भर नहीं किया।

इसी प्रकार यह कहना भी उचित नहीं कि जो व्यक्ति संसार में निर्धन, दुखी या विपन्न है, वह अपने पूर्वजन्म के बुरे कर्मों का दंड भोग रहा है और उसकी आत्मा अप्रसन्न है। वास्तव में आध्यात्मिक सुख पाने वाले वही होते हैं जिन्होंने साधनहीन और विनम्र जीवन व्यतीत की तथा सांसारिक वैभव और प्रतिष्ठा की कभी विशेष परवाह नहीं की। भारत के गुरुनानक जी, श्रीरामचन्द्र जी और श्रीकृष्ण जी के जीवन को ही देख लीजिए। इन महान व्यक्तियों ने अनेक कठिनाइयों, अभावों और कठोर परिस्थितियों का सामना किया तथा जीवन की अनेक परीक्षाओं से गुज़रे। यदि आवागमन का सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाए, तो क्या यह मानना पड़ेगा कि ये सभी अपने पूर्वजन्मों में पापी और अपराधी थे, जिसके कारण उन्हें इस जीवन में ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

मेरे विचार में प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि सीमित भोजन, सादा वस्त्र और सरल जीवन में जो मानसिक एवं आत्मिक आनंद प्राप्त हो सकता है, वह आवश्यक नहीं कि राजसी ठाठ-बाट और भोग-विलास में भी प्राप्त हो। वास्तविक सुख बाहरी साधनों की प्रचुरता में नहीं, बल्कि मन की शांति, संतोष और आत्मिक प्रसन्नता में निहित है।

अच्छे और उत्तम लोग ही अधिकतर दुख सहते हैं

धर्मात्मा और सत्यनिष्ठ लोगों ने सत्य को स्थापित रखने के लिए कैसी-कैसी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ सहन की हैं। ईश्वर के मार्ग में शहीद होने वालों ने तो अपने प्राणों तक की कुर्बानी दे दी। विश्व-इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अत्याचारियों ने न केवल निर्दोष लोगों को सताया, बल्कि उन्हें अनेक बार उनकी अपेक्षा से भी कहीं अधिक कष्ट और यातनाएँ दीं।

श्रीरामचंद्र जी को करोड़ों हिन्दू ईश्वर का अवतार मानते हैं और हम मुसलमान भी उनके सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हैं। उन्होंने चौदह वर्षों तक वनवास और लंका में जो कठिनाइयाँ और कष्ट सहन किए, वे सर्वविदित हैं। यदि कोई व्यक्ति सीता जी, लक्ष्मण जी तथा इन महापुरुषों और अन्य ऋषि-मुनियों द्वारा सहन की गई मुसीबतों और दुःखों को उनके पूर्वजन्मों के पापों का फल बताने लगे, तो यह बात न केवल अनुचित होगी, बल्कि अत्यंत अदूरदर्शिता भी होगी।

मुझे तो इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्यसमाजी अपने कर्मसिद्धान्त के आधार पर इन महापुरुषों को भी उनके पूर्वजन्मों के पापों का दण्ड भुगतने वाला कह सकते हैं; परंतु कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा। क्योंकि केवल किसी व्यक्ति के दुख में होने से यह निष्कर्ष निकाल लेना कि वह अपने पूर्वजन्म के पापों की सज़ा भुगत रहा है, बिल्कुल ही तर्कसंगत नहीं।

शरीर और कर्म एक-दूसरे पर आश्रित हैं—यह चक्र-दोष तर्क की दृष्टि से असंभव है

पूर्वजन्म अथवा आवागमन को मानने वालों का कहना है कि आत्मा को जो शरीर प्राप्त होता है, वह उसके पूर्वकृत कर्मों का परिणाम होता है। लेकिन दूसरी ओर उनका यह भी मत है कि आत्मा शरीर के बिना कोई कर्म नहीं कर सकती। इस प्रकार एक ओर कर्म शरीर की प्राप्ति का कारण ठहरता है और दूसरी ओर शरीर कर्म का आधार बन जाता है। अर्थात् कर्म शरीर पर निर्भर है और शरीर कर्म पर; कर्म के बिना शरीर नहीं मिलता और शरीर के बिना कर्म नहीं हो सकता। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के कारण और एक-दूसरे पर आश्रित ठहरते हैं। सरल शब्दों में इस तर्क की स्थिति यह बनती है—

(क) आत्मा को शरीर उसके पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होता है; लेकिन वे कर्म शरीर के बिना किए ही नहीं जा सकते थे।

(ख) आत्मा शरीर के बिना कोई कर्म नहीं कर सकती; लेकिन शरीर उसे तभी प्राप्त होगा, जब उसके पूर्वकृत कर्म मौजूद हों।

इससे प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सबसे पहले शरीर मिला या कर्म हुआ? यदि कहा जाए कि पहले कर्म हुआ, तो प्रश्न है कि शरीर के बिना वह कर्म कैसे हुआ? और यदि कहा जाए कि पहले शरीर मिला, तो प्रश्न है कि उस शरीर की प्राप्ति किस कर्म के फलस्वरूप हुई?

इस प्रकार शरीर और कर्म को एक-दूसरे पर निर्भर मानने से कारण और परिणाम की ऐसी परस्पर निर्भरता उत्पन्न होती है, जिसका कोई स्वतंत्र प्रारम्भ-बिंदु दिखाई नहीं देता। दर्शनशास्त्र में ऐसी स्थिति को अनवस्था अर्थात् कारणों की अनंत श्रृंखला (Infinite Regress) कहा जाता है; और जब किसी वस्तु के सिद्ध होने के लिए उसी वस्तु पर निर्भर दूसरी वस्तु को पहले से सिद्ध मानना पड़े, तो यह चक्र-दोष (Circular Reasoning) की स्थिति उत्पन्न करती है।

फलतः यदि यह मान लिया जाए कि शरीर कर्म का परिणाम है और कर्म शरीर का परिणाम, तो दोनों में से किसी एक की भी स्वतंत्र रूप से उत्पत्ति सिद्ध नहीं की जा सकती। शरीर के बिना कर्म नहीं और कर्म के बिना शरीर नहीं—इस प्रकार यह सिद्धान्त अपने ही आधार पर घूमता रहता है और आत्मा के प्रथम शरीर की प्राप्ति का संतोषजनक कारण प्रस्तुत नहीं कर पाता।

भूविज्ञान का शोध पुनर्जन्म के सिद्धांत के विरुद्ध गंभीर प्रश्न प्रस्तुत करता है

भूविज्ञान (Geology) के विद्वानों ने विभिन्न वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि मनुष्य के पृथ्वी पर अस्तित्व में आने से बहुत पहले ही इस धरती पर अनेक प्रकार के असंख्य जीव-जंतु निवास करते थे। ये जीव करोड़ो-अरबों वर्षों तक उत्पन्न होते और नष्ट होते रहे। पृथ्वी के इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि मनुष्य के अस्तित्व में आने से बहुत पहले विभिन्न प्रकार के जीवों की असंख्य प्रजातियाँ पृथ्वी पर पाई जाती थीं, जिनमें से अनेक कालांतर में विलुप्त हो गईं।

अब यदि आवागमन अथवा पुनर्जन्म के इस सिद्धांत को सही माना जाए कि मनुष्य की आत्माएँ अपने पापों का दंड भुगतने के लिए पशु-पक्षियों की योनियों अथवा अन्य जीवों के शरीरों में जाती हैं, तो एक गंभीर प्रश्न यह उत्पन्न होता है: जब पाप करने वाले मनुष्य ही उस समय अस्तित्व में नहीं थे, तब उनके पापों का दंड भुगतने के लिए पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों के शरीरों में कौन-सी आत्माएँ प्रवेश कर रही थीं?

मनुष्य का अस्तित्व पृथ्वी पर उन असंख्य जीवों के बहुत बाद में हुआ, जो उससे करोड़ो-अरबों वर्ष पहले पृथ्वी पर उत्पन्न होकर नष्ट हो चुके थे। अतः यदि पशु-पक्षियों के शरीरों में प्रवेश करने वाली आत्माएँ मनुष्यों के पूर्वकर्मों का फल भोग रही थीं, तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि उन आत्माओं ने मनुष्य के अस्तित्व में आने से करोड़ो-अरबों वर्ष पहले मनुष्य के रूप में पाप कर्म कैसे किए थे?

इस आपत्ति के उत्तर में यह कहा जाता है कि उन पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों के शरीरों में रहने वाली आत्माएँ किसी पूर्व-सृष्टि में जन्म लेने वाले पापी मनुष्यों की आत्माएँ थीं, तो यह उत्तर भी स्वीकार करने योग्य नहीं है। इसके प्रमुख कारण हैं:

पहला: यह केवल एक अनुमान और कल्पना पर आधारित उत्तर है। और एक ऐसा दावा है जिसका कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता। अतः केवल एक अज्ञात पूर्व-सृष्टि की कल्पना करके समस्या का समाधान मान लेना तर्क की दृष्टि से उचित नहीं।

दूसरा: यदि यह मान लिया जाए कि किसी पूर्व-सृष्टि में उत्पन्न हुए मनुष्यों की आत्माएँ अपने कर्मों के अनुसार पशु-पक्षियों और अन्य जीवों के शरीरों में प्रवेश करती रहीं, तो एक और गंभीर प्रश्न सामने आता है। इतने विशाल कालखंड में, जब पृथ्वी पर असंख्य प्रकार के जीव जन्म लेते और मरते रहे, उन आत्माओं में से किसी को भी मनुष्य का शरीर क्यों नहीं मिला? यदि आत्मा वास्तव में अपने कर्मों के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में आती-जाती रहती है, तो इतने लंबे अरसे तक मानव योनि का पूर्णतः अनुपस्थित रहना इसी सिद्धांत के विपरीत है।

इस प्रकार, पुनर्जन्म की धारणा अनेक असमंजसों को जन्म देती है—जो बिना किसी प्रमाण के, केवल कल्पनाओं और अटकलों के आधार पर खड़ा हैं।

संसार में जीव-जंतुओं की तुलना में मनुष्यों की न्यूनता

संसार में लाखों-करोड़ों प्रकार के जीव-जंतु और प्राणी पाए जाते हैं, जिनमें मनुष्य भी केवल एक प्रकार का जीव है। पशु-पक्षियों तथा अन्य छोटे-बड़े जीवों की तुलना में मनुष्यों की संख्या अत्यंत कम है। दोनों की संख्या में ऐसा कोई अनुपात भी दिखाई नहीं देता जिसमें मनुष्यों की संख्या को एक इकाई मानकर अन्य जीवों की संख्या से उसकी तुलना की जा सके।

उदाहरण के तौर पर, पानी की एक बूँद को लीजिए। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर उसमें असंख्य सूक्ष्म जीव दिखाई देते हैं। यदि पानी की एक बूँद में ही इतनी बड़ी संख्या में सूक्ष्म जीव मौजूद हैं, तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि एक घड़े भर पानी में उनकी संख्या कितनी अधिक होगी। ऐसी स्थिति में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि केवल एक छोटे-से जलाशय अथवा तालाब में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या भी मनुष्यों की कुल संख्या से कहीं अधिक हो सकती है।

इसी प्रकार, मनुष्य या कोई पशु जब साँस लेता है तो उसके साथ हवा में मौजूद असंख्य सूक्ष्म जीव भी शरीर के भीतर प्रवेश करते हैं। फिर यदि बड़े-बड़े पशु-पक्षियों, चरने वाले जानवरों, हिंसक जीवों, मछलियों तथा धरती पर रेंगने वाले असंख्य जीवों को अलग भी कर दिया जाए, तब भी केवल जलाशयों, मिट्टी और छोटे-छोटे मैदानों में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या मनुष्यों की संख्या की तुलना में अत्यंत विशाल दिखाई देती है।

अब यहाँ पुनर्जन्म अथवा आवागमन के सिद्धांत के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है। यदि यह माना जाए कि मनुष्य की पापी आत्माएँ अपने पापों की सजा भुगतने के लिए कीड़े-मकोड़ों तथा अन्य

छोटे-छोटे जीवों के शरीरों में जन्म लेती हैं, तो इतने असंख्य जीवों के शरीरों में प्रवेश करने के लिए आवश्यक आत्माएँ कहाँ से आईं?

मनुष्यों की संख्या जहाँ सीमित है, वहीं सूक्ष्म जीवों की संख्या अत्यंत विशाल है। यदि इन सभी जीवों के शरीरों को पापी मनुष्यों की आत्माओं के लिए दंड-स्थल माना जाए, तो यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इतनी बड़ी संख्या में आत्माएँ मूलतः कहाँ से उत्पन्न हुईं और वे क्रमशः इतनी विशाल संख्या में जीवों के शरीरों तक कैसे पहुँचीं?

अतः जीव-जगत की संख्या और मनुष्यों की संख्या के इस असाधारण अंतर को देखते हुए पुनर्जन्म अथवा आवागमन के उस सिद्धांत पर गंभीर प्रश्न उत्पन्न होता है, जिसके अनुसार मनुष्य अपनी आत्मा के पूर्वकर्मों के परिणामस्वरूप विभिन्न पशु-पक्षियों और सूक्ष्म जीवों के शरीरों में जन्म लेते हैं।

पुनर्जन्म के सिद्धांत और सत्कर्मों में विरोधाभास

पुनर्जन्म के सिद्धांत के अनुसार आत्मा का मनुष्य के शरीर में जन्म लेना उसके अच्छे कर्मों का फल है, जबकि पशु-पक्षियों अथवा वनस्पतियों के शरीर में जन्म लेना उसके बुरे कर्मों का दंड माना जाता है। सभी धर्मों में इस बात पर सहमति है कि मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अच्छे कर्म करे, बुराइयों से बचे और सदाचार का जीवन व्यतीत करे। पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले लोग भी अपने सिद्धांत के अनुसार मनुष्यों को सत्कर्म करने और दुष्कर्मों से बचने की शिक्षा देते हैं तथा यह चाहते हैं कि संसार के सभी लोग नेक और सदाचारी बन जाएँ।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि मनुष्य अपने कर्तव्यों को भली-भाँति पालन करें, अच्छे कर्म करते रहें और बुराइयों से पूरी तरह बचें, तो इस सिद्धांत के अनुसार उसका परिणाम क्या होगा? निश्चित रूप से, जो आत्माएँ वर्तमान में मनुष्यों के शरीरों में हैं, वे अपने सत्कर्मों के कारण भविष्य में पशु-पक्षियों अथवा वनस्पतियों के शरीरों में जन्म नहीं लेंगी। दूसरी ओर, जो आत्माएँ पशु-पक्षियों अथवा वनस्पतियों के शरीरों में अपने पूर्वकर्मों का दंड भुगत रही हैं, वे अपनी-अपनी दंडावधि पूरी करके पुनः मनुष्य के शरीरों में आती रहेंगी। ऐसी स्थिति में एक दिन वह समय आएगा, जब संसार में केवल मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देंगे—न कोई पशु बचेगा, न पक्षी और न वृक्ष-वनस्पति।

उस समय संसार की स्थिति कितनी विचित्र और भयावह होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही शरीर सिहर उठता है। मनुष्यों के भोजन के लिए अनाज, फल और सब्जियाँ कहाँ से आएँगी? दूध प्राप्त करने के लिए गाय, भैंस और बकरियाँ नहीं रहेंगी। कपड़े बनाने के लिए कपास, सन और ऊन के स्रोत भी समाप्त हो जाएँगे। इसी प्रकार, यातायात एवं भार ढोने के लिए घोड़े, गधे और ऊँट नहीं मिलेंगे तथा खेती के लिए

बैल आदि भी उपलब्ध नहीं होंगे। संक्षेप में, मानव-जीवन की अनेक मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी करना असंभव हो जाएगा और सारी सृष्टि-व्यवस्था चरमरा जाएगी।

अतः इस सिद्धांत के मानने वालों के सामने तो एक विचित्र प्रश्न उत्पन्न होनी चाहिए थी। यदि सत्कर्मों का परिणाम यह होना है की आत्माएँ यदि पशु-पक्षियों और वनस्पतियों के शरीरों से निकलकर मनुष्य के शरीरों में आती जाएँगी, तो संसार में पशु-पक्षियों और वनस्पतियों का अस्तित्व धीरे-धीरे समाप्त होता चला जाएगा। इसी दृष्टि से तो पुनर्जन्म के सिद्धांत के समर्थकों का पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि वे संसार की प्राकृतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सत्कर्मों से बचने का प्रयास करें; बल्कि उनके सिद्धांत की तार्किक परिणति तो यह होगी कि वे बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त हों, ताकि आत्माएँ मनुष्य के शरीरों को छोड़कर पशु-पक्षियों और वनस्पतियों के शरीरों में जाति रहें और संसार मे मानवों का अस्तित्व, अन्न, गाय, बैल, भैंस, बकरी, वनस्पति आदि का उत्पादन यथावत बना रहे। (मआज़ल्लाह)

सज़ा का प्रभावी और अनुभवनीय होना आवश्यक है

सज़ा तभी सार्थक है, जब वह प्रभावी हो—अर्थात उसकी पीड़ा आत्मा को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव हो। एक अप्रभावी सज़ा वास्तव में सज़ा ही नहीं कही जा सकती।

अब यदि यह मान लिया जाए कि मनुष्य की आत्मा को उसके पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप किसी पशु या वृक्ष के शरीर में डाल दिया जाता है, तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या वह जीवात्मा उस अवस्था में अपने पूर्वकृत कर्मों की सज़ा का वास्तविक अनुभव कर पाती है? और यदि कर पाती है, तो किस प्रकार?

यदि पशु-योनि को जीवात्मा के लिए दंडस्वरूप माना जाए, तो उसके व्यवहार में उस दंड की अनुभूति दिखाई देनी चाहिए। परंतु एक सामान्य से सामान्य पशु भी अपनी जीवन में संतुष्ट और प्रसन्न दिखाई देते हैं। और अपने वातावरण तथा आहार को उसी सहजता से स्वीकार करते हैं, जिस सहजता से मनुष्य अपने अनुकूल वातावरण और भोजन को स्वीकार करता है।

उदाहरण के तौर पर—किसी सुअर को कीचड़ और कूड़े के ढेर के पास छोड़कर देखिए। वह उस गंदगी से मनुष्य की तरह घृणा करके दूर नहीं भागता, बल्कि बड़े आनंद से उसी में भोजन खोजता और सहज रूप से उसे खाता है। इसी प्रकार, किसी गिद्ध को सड़ती हुई लोथ के पास छोड़िए—वह उससे घृणा करने की जगह, उत्साहपूर्वक उस पर झपटता है और उसे अपना स्वाभाविक आहार समझकर खाता है। जिस भोजन को मनुष्य अत्यंत घृणित और अरुचिकर समझता है, वही भोजन उन जीवों के लिए स्वाभाविक और प्रिय आहार है—ठीक उसी तरह, जैसे किसी राजा को पचासों व्यंजनों से सजी थाली प्रिय होती है।

ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाए कि किसी जीवात्मा को उसके पापों की सज़ा देने के लिए सुअर या गिद्ध का शरीर प्रदान किया गया है, तो प्रश्न यह उठता है—उस आत्मा को अपनी सज़ा का अनुभव उस शरीर में कहाँ, और किस रूप में हुआ?

यदि वह जीवात्मा सुअर के शरीर में रहकर उसी भोजन को स्वाभाविक रूप से ग्रहण करती है जिसे वह सुअर के रूप में अपना आहार समझती है, या गिद्ध के शरीर में रहकर सड़ी हुई लोथ को सहज रूप से खाती है, तो उसके पूर्वकृत पापों की सज़ा का वास्तविक बोध किस प्रकार हुआ? केवल शरीर और उसकी जीवन-प्रणाली का बदल जाना अपने-आप में दंड का अनुभव नहीं कहा जा सकता।

वृक्षों और वनस्पतियों के संबंध में भी पुनर्जन्म के समर्थक कहते हैं कि जीवात्मा उनमें प्रवेश करके चेतनायुक्त या गहन निद्रा की अवस्था में रहती है। ऐसी दशा में तो सज़ा के अनुभव का प्रश्न ही असंगत हो जाता है, क्योंकि जिस अवस्था में पीड़ा या दंड का बोध ही न हो, वहाँ सज़ा के उद्देश्य की पूर्ति कैसे मानी जा सकती है?

सज़ा का उद्देश्य किसी जीव को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचा देना नहीं, बल्कि उसके किए गए अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ा या दंड का अनुभव कराना होता है। यदि दंडित व्यक्ति को दंड का बोध ही न हो, तो वह दंड अपने नैतिक और सुधारात्मक उद्देश्य को पूरा नहीं करता।

अतः इस दृष्टि से पुनर्जन्म या आवागमन का सिद्धांत एक निरर्थक, अनुभवहीन और आधारहीन मान्यता मात्र है।

दंड और पुरस्कार के लिए आत्मा का अपने कर्मों का ज्ञान होना आवश्यक है

दंड और पुरस्कार की प्रक्रिया तभी सार्थक है, जब आत्मा को अपने किए गए कर्मों का पूर्ण ज्ञान हो। उसे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि कौन-से शुभ कर्मों के फलस्वरूप उसे पुरस्कार प्राप्त हो रहा है, और किन अशुभ कर्मों के कारण उसे दंड भोगना पड़ रहा है—ताकि वह सत्कर्मों को अपनाए और दुष्कर्मों से बच सके। इस ज्ञान के अभाव में दंड और पुरस्कार का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाता है।

यह विचारणीय है कि पुनर्जन्म के सिद्धांत के अनुसार, दंड-पुरस्कार की यह व्यवस्था इतनी व्यापक है कि पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति तक; कोई भी जीव इससे अछूता नहीं। किंतु विडंबना यह है कि इस सिद्धांत के अनुसार न तो पुण्यात्मा को यह ज्ञात होता है कि किस सत्कर्म के फलस्वरूप उसे पुरस्कार प्राप्त हुआ, और न ही पापी को यह पता चलता है कि किस पाप के कारण उसे दंड भोगना पड़ रहा है। ऐसी दशा में दंड-पुरस्कार की समूची प्रणाली —अर्थात् जिस उद्देश्य से दंड-पुरस्कार दिए जा रहे थे, वही उद्देश्य पूरा नहीं होता।

यदि इसके उत्तर में यह तर्क दिया जाए कि मनुष्य बाल्यावस्था की बातें भूल जाता है, स्वप्न में देखी हुई घटनाएँ भी जागने के बाद याद नहीं रहतीं, और पागल व्यक्ति अपनी चेतना खो बैठता है—उसी प्रकार यदि मृत्यु के उपरांत मनुष्य को अपने पूर्वजन्म की बातें याद न रहें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। तो इसका उत्तर यह है कि—

(१) यदि कोई मानसिक रूप से असंतुलित व्यक्ति किसी की हत्या कर देता है, तो उसे तब तक दंडित नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसकी बुद्धि और इंद्रियाँ सामान्य न हो जाएँ, अथवा यह सिद्ध न हो जाए कि हत्या के समय वह पूर्ण होशो-हवास में था।

(२) इसी प्रकार, अज्ञान बालकों, चेतनाशून्य व्यक्तियों, या मृतकों को कोई न्याय-व्यवस्था कारावास या दंड की सजा नहीं देती।

(३) कल्पना कीजिए कि यदि कोई न्यायाधीश किसी व्यक्ति को बिना अपराध की जाँच किए, बिना अभियुक्त को उसके अपराध से अवगत कराए, और बिना उसका पक्ष सुने, उसे दस वर्ष के कारावास या प्राणदंड की सजा सुना दे, तो संसार उस न्यायाधीश के विषय में क्या राय रखेगा—यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

जब मानव-निर्मित न्याय-व्यवस्था में भी यह आवश्यक माना जाता है कि अपराध सिद्ध हो, अपराधी को उसके अपराध का ज्ञान हो और उसे अपना पक्ष रखने का अवसर मिले, तो ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के संबंध में यह विचार कि वह किसी आत्मा को ऐसे ही कर्मों की सज़ा देगा, जिनका उसे कोई ज्ञान या स्मरण ही नहीं—कितना असंगत है। चूँकि ईश्वर न्याय-स्वरूप है, और उसका कानून न्याय व इंसाफ का पर्याय है, अत: वह कभी भी ऐसा अन्याय नहीं कर सकता कि किसी आत्मा को ऐसे दंड से यातना दे, जिसके कारण-स्वरूप अपराध का उसे जरा-सा भी भान न हो।

यदि पुनर्जन्म का सिद्धांत वास्तव में सत्य होता, तो भले ही आत्मा को अपने पूर्वजन्म की सभी बातें स्मरण न रहतीं, किंतु कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ—विशेषकर प्रमुख पाप या पुण्य—अवश्य उसकी स्मृति में बनी रहतीं। ऐसा न होना ही इस बात का प्रमाण है कि पुनर्जन्म का यह सिद्धांत मात्र एक भ्रांति एवं कल्पना है, जिसका कोई ठोस आधार नहीं।

पुनर्जन्म पापों का नाश नहीं, बल्कि उन्हें और प्रबल करता है

दंड का एक प्रमुख उद्देश्य अपराधी का सुधार होता है, किंतु पुनर्जन्म अथवा आवागमन के सिद्धांतों में निर्धारित दंड-व्यवस्था सुधार में सहायक न होकर, अपराधी की बुरी प्रवृत्तियों को और अधिक बल प्रदान करती है। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी व्यभिचारी मनुष्य को सुअर की योनि में जन्म दिया जाए, तो क्या इससे उसके काम-विकार में कमी आएगी? निश्चित रूप से नहीं; बल्कि पशु-योनि में संभोग एक

स्वाभाविक एवं अनियंत्रित है। वहाँ उसे और अधिक खुला वातावरण मिलता है, जो उसकी मूल प्रवृत्ति को और उत्तेजित करता है। इसी प्रकार, यदि मांसभक्षी मनुष्यों को शेर, बाघ, चिता, बाज, चील या कौए की योनि में भेजा जाए, तो यह दंड न होकर उनकी हिंस्र प्रवृत्ति को पोषण देने वाला साधन मात्र है। वहाँ वे बिना किसी रोक-टोक के अपनी वासना एवं क्रूरता की पूर्ति कर सकते हैं—जो मानव-जीवन में कठिन थी, वही पशु-जीवन में सहज एवं सुलभ हो जाती है।

इस दंड-प्रणाली में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि पशु-योनि में तो प्रवृत्तियाँ और अधिक गहरित होती हैं। दूसरी ओर, जब ऐसी आत्माएँ अपनी पशु-योनि की अवधि पूर्ण करके पुनः मनुष्य शरीर धारण करेंगी, तो वे अपने साथ वही संस्कार, वही अभ्यास और वही स्वाद लेकर आएँगी—जो पूर्वजन्म में उन्हें प्राप्त थे। परिणामस्वरूप, मानव-जन्म में भी उन्हीं अपराधों की पुनरावृत्ति होगी, न कि उससे मुक्ति।

इस विषय को और विस्तार से समझने के लिए मनुस्मृति के बारहवें अध्याय को देखा जा सकता है, जिसमें कर्मों के अनुसार विभिन्न प्रकार के जन्मों तथा दंड और पुरस्कार के विचित्र सिद्धांतों का वर्णन हैं—और जिन पर अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उत्पन्न होती है।

पुनर्जन्म का सिद्धांत : नैतिकता और सद्‌गुणों का विरोधी

पुनर्जन्म का सिद्धांत दया, करुणा, उपकार, सहानुभूति, मानवता और सद्व्यवहार का घोर विरोधी है। इस सिद्धांत के मानने वालों की धारणा है कि व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक विपत्ति, आपदा, पीड़ा और दुख उसके किसी-न-किसी पूर्वजन्म के पापों की सज़ा है। उनके अनुसार, मनुष्य को अपने पूर्वकृत पापों का दंड अवश्य मिलता है, और ईश्वर किसी भी पाप को क्षमा नहीं करता।

आर्यसमाज के मतानुसार यदि ईश्वर किसी के पाप क्षमा कर दे, तो उसकी न्याय-व्यवस्था भंग हो जाएगी और वह अन्यायी ठहरेगा। अब यदि ईश्वर जी की इसी न्याय-व्यवस्था को हम अपने जीवन के लिए भी आदर्श मान लें, तो उसके अनुसार हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?—

(१) यदि कोई निर्धन और भूखा व्यक्ति रोटी माँगे, तो उसे रोटी नहीं देनी चाहिए, क्योंकि उसकी निर्धनता और भूख (गरीबी) उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

(२) यदि कोई रोगी मृत्यु के निकट हो और अत्यंत पीड़ा में पड़ा हो, तो उसकी सेवा और सहायता करने के बजाय उसे वैसे ही मरने छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसकी पीड़ा भी उसके पूर्वकृत कर्मों का दंड है।

(३) यदि कोई दुखी और आकांक्षी विधवा सहायता माँगने आए, तो उससे यह स्पष्ट कह देना चाहिए कि "जाओ और अपने कर्मों का फल भुगतों; जैसी करनी, वैसी भरनी।"

(४) यदि कोई लँगड़ा, भूखा अथवा अनाथ बालक कहीं बिलखता दिखे, तो उसकी सहायता करने के बजाय उसे यह कहकर दुत्कार देना चाहिए कि उसका यह दुख उसके किसी पूर्वकर्मों का परिणाम है।

(५) यदि कोई दूध-पीता मासूम बच्चा, जिसकी माँ मर चुकी हो अथवा मृत्यु में निकट हो, तो उसके गले से दूध या पानी की एक बूँद भी न उतरने पाए—क्योंकि पुनर्जन्मवादियों के अनुसार ये सभी पीड़ा और दुख उसके पूर्वजन्मों के कर्मों का ही फल हैं।

और जब स्वयं ईश्वर ने इन अपराधियों को उसके पूर्वकृत कर्मों के कारण ऐसी-ऐसी पीड़ाओं और दुखों में डाल रखा है, तो फिर मनुष्य को उसके दुख को कम करने के लिए आगे क्यों आना चाहिए? यदि ईश्वर किसी व्यक्ति को उसके कर्मों के प्रतिफल से मुक्त नहीं करता और बिना कर्मफल के किसी पर उपकार नहीं करता, तो हम क्यों करें? क्या संसार में ऐसा कोई सद्‌गुणी व्यक्ति होगा, जो ईश्वर के इन कथित सद्‌गुणों को अपने जीवन में उतारने को तैयार हो?

आवागमन (पुनर्जन्म) के लिए पापों की अनिवार्यता

मैं पहले ही इस तथ्य को स्पष्ट कर चुका हूँ कि यदि आवागमन के सिद्धांत को सत्य मान लिया जाए, तो उसका अनिवार्य परिणाम यह निकलता है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पाप करने को विवश है। इसका एक और परिणाम यह भी है कि जितने अधिक पाप होंगे, मानव-जीवन उतना ही अधिक सुखमय होगा। क्योंकि हमारे चारों ओर जितने भी पशु-पक्षी, जीव-जंतु, घास-फूस, फल-सब्जियाँ तथा वृक्ष हैं, वे सब हमारे ही पापों का फल हैं। वस्तुतः यह कहना अधिक उचित होगा कि वे हमारे ही भाई-बंधु हैं, जो अपने पूर्वजन्म के पापों का दंड भोगने के लिए इन योनियों में पड़े हैं और हमारी खाद्य-सामग्री बनकर हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं।

इस सिद्धांत के अनुसार, यह कहना भी किसी प्रकार गलत नहीं होगा कि हम सबसे निकृष्ट कोटि के नरभक्षी हैं। क्योंकि कोई भी यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि जिस मूली, गाजर या साग-पात को वह चाव से खा रहा है, वह पूर्वजन्म में उसका प्रिय पुत्र, मित्र, माता-पिता या भाई-बहन नहीं रहा होगा। इसी प्रकार, कोई यह भी नहीं कह सकता कि जिस घोड़े, गधे या खच्चर की पीठ पर वह सवारी करता है और जिस पर वह कोड़े बरसाता है, वह पूर्वजन्म में उसकी प्रिय पत्नी या पुत्र नहीं था, जो अपने किसी निकृष्ट अपराध के कारण आज पशु-योनि में पड़कर उसके कोड़ों की शिकार बन रहा है।

इसी तरह, यह भी असंभव है कि कोई यह कह सके कि जिस शीशम या कीकर के सुंदर वृक्ष को वह आरी से कटवाकर अपने घर की छत का खंभा या फर्नीचर बनवाता है, वह वृक्ष उसके पूर्वजन्म का कोई माता-पिता या भाई-बहन नहीं है, जो अपने बुरे कर्मों के कारण इस योनि में आकर उसके हाथों कट-फट रहा है।

अतः आवागमन या पुनर्जन्म के सिद्धांत के अनुसार, हमें अपनी अवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने ही भाई-बंधुओं के पापों पर आश्रित रहना पड़ता है। और इस सिद्धांत के अस्तित्व में, संसार का संचालन पूर्ण

रूप से पाप पर आधरित मानना होगा—अर्थात, यदि पाप न हो, तो ईश्वर जी भी (जो कि आर्यों के सिद्धांतनुसार सर्वशक्तिशाली है) मानव-योनियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं रहेंगे। इस संदर्भ में, (बताया जाता है कि) पूर्व भारत (लाहौर) के एक विश्वविद्यालय के छात्र का लेख उल्लेखनीय है, जो पुनर्जन्म के सिद्धांत का समर्थक था और आर्यसमाज से जुड़ा था। उसने अपने समुदाय के समाचार-पत्र में एक अत्यंत रोचक और तार्किक लेख प्रकाशित किया था। अतः मैं आवश्यक समझता हूँ कि उस लेखनी को यहाँ ज्यों-का-त्यों उर्दू से हिंदी में प्रस्तुत कर दूँ। वह लेखनी कुछ इस प्रकार से है—

संसार में पाप की आवश्यकता है

आज जिस विषय पर मैं कलम उठाने लगा हूँ, वह धार्मिक जगत के लिए निश्चय ही एक अप्रिय और नया विषय है। संसार के समस्त धर्मों की आंतरिक एवं बाह्य प्रयासें पाप की सत्ता को मिटाने में ही व्यतीत हुई हैं और हो रही हैं। गंभीर चिंतकों तथा ईश्वर-प्राप्त लोगों ने इस बात का निर्णय दे दिया है कि सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, जब तक कि पाप को जड़ से उखाड़ न दिया जाए और उसके स्थान पर पूण्य या नेकी का सुगंधित पौधा अपनी जगह न पकड़ ले। सृष्टि के आरंभ से लेकर आजतक पाप के विरुद्ध विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकारों से संघर्ष जारी रखा है। किंतु पाप की अधीनस्थ और अमिट शक्तियों के सामने मानवीय प्रयास पूर्णतः निष्फल सिद्ध हुए हैं। आश्चर्य की बात है कि मनुष्यों और धर्मों की संयुक्त, निरंतर एवं अथक प्रयासों के बावजूद पाप की सत्ता आज भी संसार के हर क्षेत्र तथा वर्ग में कायम है, और उसका सिक्का तथा प्रभाव प्रत्येक ह्रदय पर छाया हुआ है।

मैं समझता हूँ कि इस समय पाप के पक्ष में आवाज़ उठाना; स्वयं को धार्मिक मुल्लाओं के दरबार में गर्दन कटवाने के समान है। तथापि मैं इस समय मज़हबी या धार्मिक विवाद में पड़ना नहीं चाहता। मेरा उद्देश्य केवल पाप की सत्ता और उसके महत्व पर दार्शनिक चर्चा प्रस्तुत करना है। और चूँकि आपका समाचार-पत्र "आर्य गज़ट" (Arya Gazette) वैदिक धर्म का पत्र है, इसलिए मैं वैदिक धर्म की मान्यताओं के अनुसार ही आज आपके और आपके सहधर्मी दार्शनिकों के सामने पाप की आवश्यकता का प्रश्न रखता हूँ। आशा है कि विचारशील भाई मेरी लेखनी को केवल एक दीवाने की बड़बड़ाहट नही समझेंगे, बल्कि मेरे प्रश्न की गंभीरता और सूझ-बूझ के साथ उत्तर देकर मुझ पर कृपा करेंगे।

आवागमन क्या है?

आवगमन का सिद्धांत वैदिक धर्म का प्राण है, और यह कर्मों पर आधारित है। कर्मों के संबंध में वैदिक सिद्धांत यह है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, और मृत्यु के बाद परमात्मा उसके कर्मों के अनुसार उसकी आत्मा को दूसरी योनि में भेज देता है। इन विभिन्न योनियों की संख्या वैदिक मान्यता के अनुसार चौरासी लाख (८४ लाख) बताई गई है। इन सभी योनियों में सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठ योनि मनुष्य-योनि माना

जाता है। कहा जाता है कि मनुष्य-योनि अनेक पुण्यों और शुभ कर्मों का फल है। और इस शरीर में जो आत्मा बुरे कर्मों की दोषी होती है, तो परमात्मा उसे दंड देकर दूसरे निम्न श्रेणी की योनि में भेज देता है। मानो, यह बात स्पष्ट है और जिसपर प्रत्येक हिन्दू तथा आर्य समाज का पूर्ण विश्वास है कि संसार के समस्त प्राणी परमात्मा के कैद में हैं, जिसमें ईश्वर अपने दैवीय नियम के अनुसार आत्माओं को एक निश्चित अवस्था और अवधि के लिए कैद कर देता है। और हम प्रतिदिन सुनते है कि जितने भी प्राणी हमें इस धरती पर दिखाई देते है, ये सब पापी है और अपने कर्मों का दंड भोग रहे है।

यही वह विचार है जो हिन्दू धर्म और उसके विश्वासों का एक प्रमुख अंग है। अब स्वाभाविक रूप से एक विचारशील मस्तिष्क में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या यह सारी सृष्टि और

संसार पाप का परिणाम है?

मेरी अल्पबुद्धि में इस अनोखे प्रश्न का उत्तर सकारात्मक ही मिलेगा, क्योंकि कर्म और आवागमन के सिद्धांत के अनुसार संसार के सभी जीव—मनुष्य, घोड़े, हाथी, पक्षी, साँप, कीड़े-मकोड़े, बल्कि वृक्ष और वनस्पत्तियाँ आदि तक अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। और इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि यदि ये सभी आत्माएँ पूर्वजन्मों में पाप कर्म न करतीं, तो आज इन विभिन्न शरीरों के बंधनों में नहीं होतीं। दूसरे शब्दों में, यदि आत्माएँ पाप न करतीं, तो आज संसार में हमें ये विभिन्न जीव-जंतु दिखाई ही न देते।

कुछ क्षण के लिए कल्पना कीजिए कि यदि आज संसार का प्रत्येक मनुष्य सर्वथा पाप करना छोड़ दे और पशु तथा दूसरे छोटे-बड़े जीव, जो करोड़ों प्रकार से इस संसार में कैद होकर सड़ रहे हैं, अपनी-अपनी सजाएँ भुगतकर मुक्त हो जाएँ, तो संसार का क्या दृश्य होगा? वैदिक धर्मी झट से इसका उत्तर देंगे कि वे सब मुक्त हो जाएँगे। किंतु इस उत्तर से उनके सामने एक और आपत्ति उत्पन्न होती है। वह यह कि वैदिक मान्यता के अनुसार जब प्रलय के बाद फिर सृष्टि की उत्पत्ति होगी, तो परमात्मा उस समय इन विभिन्न प्राणियों के लिए किस प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करेगा? मान लिया कि मुक्त आत्माएँ अपनी मुक्ति की निर्धारित अवधि पूरी करके फिर संसार में मनुष्य-योनि धारण करेंगी। अच्छा, अब उस समय का दृश्य अपनी आँखों के सामने लाइए। उस समय

परमात्मा के कैदी (बंदी)

बैल, गाय, भैंस, घोड़े, हाथी और चौरासी लाख अन्य जीव, जो हर युग में मनुष्य के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं—बिल्कुल भी मौजूद नहीं होंगे। यहाँ तक कि संसार में वृक्ष और वनस्पतियाँ भी दिखाई नहीं देंगी। कोयल की मधुर आवाज, मैना की मनोहर बोली, बुलबुल के हृदयस्पर्शी गीत और गाय का मीठा

दूध; मीठे आम, अनाज, फल-फूल, सब्जियाँ, आलू आदि—अर्थात मनुष्य की आवश्यकताओं की सारी वस्तुएँ संसार के पटल से लुप्त होंगी।

मेरे विचार में यदि इस लेख को पढ़ने वाला व्यक्ति कुछ मिनट अपने मन में ऐसे दर्दनाक और भयावह दृश्य की कल्पना करे, तो उसे पता चल जाएगा कि संसार केवल एक शून्य रह जाएगा, जिसमें कुछ सिसकती हुई मानवीय आत्माएँ तड़प-तड़पकर अपनी जान दे देंगी। अफसोस! कि परमात्मा का सारी सृष्टि-व्यवस्था क्षण भर में मिट्टी में मिल जाएगी और परमात्मा अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार कार्य करने में असमर्थ रह जाएगा। न कर्म होंगे, न कर्मों का फल देने वाला, न पिता होगा न पुत्र। तारे और चंद्र आश्चर्य से सुनी पृथ्वी पर निगाहें डालकर उदासी से आहें भरेंगे। और बेचारा सूर्य भी अपना लटका मुँह लेकर सूर्यमंडल में खड़ा रह जाएगा। न प्रजा होगी, न ईश्वर का राज्य।

संक्षेप में, इस अत्यंत दर्दनाक दर्शय का वर्णन कहा तक किया जाए। अतः हम स्वाभाविक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ईश्वर की बादशाहत, संसार का अस्तित्व, मानवीय जीवन तथा प्रकृति के सुखद एवं मनोहर दृश्यों को बनाए रखने के लिए

पाप मानव जीवन का एक अनिवार्य अंग है

लेखक

एक खोजकर्ता आनंदपुर से,

(आर्य गज़ट)